स्वतंत्र भारत के महत्त्वपूर्ण निर्णय

- वर्ष 1950 में अधिनियमित भारत का संविधान भारत के लोकतंत्र की आधारशिला रहा है। इसके लागू होने के बाद इसमें कई संशोधन हुए हैं।
- सर्वोच्च न्यायालय संविधान का अंतिम व्याख्याकार है और अपनी रचनात्मक एवं अभिनव व्याख्या द्वारा हमारे मौलिक अधिकारों तथा संवैधानिक स्वतंत्रता का रक्षक रहा है।

केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973)

मुख्य विषय:

- इसके अंतर्गत संविधान की 'आधारभूत संरचना' (Basic Structure) का ऐतिहासिक सिद्धांत दिया गया था।
- यह इस कारण से अद्वितीय था कि इसने लोकतांत्रिक शक्ति के संतुलन में बदलाव किया। इससे पहले के निर्णयों में यह कहा गया था कि संसद एक उचित विधायी प्रक्रिया के माध्यम से मौलिक अधिकारों में संशोधन कर सकती है।
- लेकिन इस मामले में निर्णय लिया गया कि संसद संविधान की मूल संरचना अर्थात् 'बुनियादी संरचना' में संशोधन या परिवर्तन नहीं कर सकती है।
- इसके अलावा केशवानंद प्रकरण इस मायने में महत्त्वपूर्ण था कि सर्वोच्च न्यायालय ने भारतीय संविधान की अखंडता के संरक्षण के कार्य को स्वयं स्वीकार किया।
- न्यायालय द्वारा तैयार बुनियादी संरचना का सिद्धांत न्यायिक रचनात्मकता के शिखर का प्रतिनिधित्व करता है और दुनिया भर की अन्य संवैधानिक अदालतों के लिये एक बेंचमार्क निर्धारित करता है।
- इस सिद्धांत ने यह निर्णय दिया कि यदि संविधान की मूल संरचना से छेड़खानी की गई तो इस संविधान संशोधन को अमान्य किया जा सकता है।

मूल संरचना के सिद्धांत का विकास

- भारतीय संविधान को अपनाने के बाद से ही संविधान के प्रमुख प्रावधानों में संशोधन करने की संसद की शक्ति पर बहस शुरू हो गई है।
- स्वतंत्रता के प्रारंभिक वर्षों में सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान में संशोधन करने के लिये संसद को पूर्ण शक्ति प्रदान की, जैसा कि शंकरी प्रसाद मामले (1951) और सज्जन सिंह मामले (1965) के निर्णयों में देखा गया था।
- इसका अर्थ है कि संसद के पास मौलिक अधिकारों सहित संविधान के किसी भी भाग को संशोधित करने की शक्ति थी।
- हालाँकि गोलकनाथ मामले (1967) में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि संसद मौलिक अधिकारों में संशोधन नहीं कर सकती है और यह शक्ति केवल संविधान सभा के पास होगी।
- न्यायालय ने कहा कि अनुच्छेद 368 के तहत संशोधन यदि भाग III द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकार को " निरस्त करता है" तो यह शून्य है।
- वर्ष 1970 के दशक की शुरुआत में तत्कालीन सरकार द्वारा आरसी कूपर बनाम भारत संघ (1970), मदनराव सिंधिया बनाम भारत संघ (1970) आदि मामलों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिये गए निर्णयों को बदलने के लिये संविधान (24, 25, 26 और 29वें संवैधानिक संशोधन द्वारा) में व्यापक संशोधन किये गए।
- यहाँ ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि आरसी कूपर मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने इंदिरा गांधी सरकार के 'बैंकों का राष्ट्रीयकरण' किये जाने के निर्णय को अवैध घोषित किया था। जबकि माधवराव सिंधिया मामले में पूर्व शासकों को दी जाने वाली 'प्रिवी पर्स' को समाप्त करने संबंधी संशोधन को अवैध घोषित किया गया था।
- सरकार द्वारा लाए गए सभी चार संशोधनों को केशवानंद भारती मामले में चुनौती दी गई थी।

मेनका गांधी बनाम भारत संघ (1978)

मुख्य विषय:

भारत के संविधान के तहत 'जीवन के अधिकार' अर्थ का विस्तार करना।

- वर्ष 1977 में मेनका गांधी का पासपोर्ट वर्तमान सत्तारूढ़ जनता पार्टी सरकार द्वारा ज़ब्त कर लिया गया था।
- जवाब में उन्होंने सरकार के आदेश को चुनौती देने के लिये सुप्रीम कोर्ट में एक याचिका दायर की।
- इस मामले में अनुच्छेद 21 के तहत जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान किया गया है जो यह सुनिश्चित करता है कि कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार कोई भी व्यक्ति अपने जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं होगा।

- इस निर्णय के अस्तित्व में आने से पहले अदालतों को किसी भी कानून पर सवाल उठाने की अनुमति नहीं दी गई थी, चाहे वह कानून के अनुकूल हो या ना हो, चाहे वह जीवन के अधिकार या व्यक्तिगत स्वतंत्रता के उल्लंघन के मामले में मनमाना या दमनकारी क्यों न हो।
- हालाँकि अनुच्छेद 21 के तहत अपने आप को ठोस समीक्षा की शक्ति देकर न्यायालय ने पर्यवेक्षक से संविधान के प्रहरी का रूप धारण कर लिया।
- मेनका गांधी मामले में सुप्रीम कोर्ट के निर्णय का प्रभावी रूप से मतलब था कि अनुच्छेद 21 के संदर्भ में 'कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया' के साथ 'कानून की उचित प्रक्रिया ' को ध्यान में रखा जाएगा।
- बाद के एक निर्णय में सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि अनुच्छेद 21 के अनुसार कोई भी व्यक्ति वैध कानून द्वारा स्थापित न्यायसंगत और उचित प्रक्रिया के अलावा अपने जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं होगा।

मोहम्मद अहमद खान बनाम शाहबानो बेगम (1985)

मुख्य विषय:

- व्यक्तिगत धार्मिक कानूनों की पवित्रता पर सवाल उठाना और एक समान नागरिक संहिता पर बहस को आगे बढ़ाना।
- अप्रैल 1985 में सुप्रीम कोर्ट ने मोहम्मद अहमद खान बनाम शाह बानो बेगम (शाह बानो) मामले में तलाकशुदा मुस्लिम महिला को अपने पूर्व पति से निर्वाह योग्य आय प्राप्त करने के अधिकार के बारे में निर्णय सुनाया।
- इसे भारत में अधिकारों के लिये मुस्लिम महिलाओं की लड़ाई और मुस्लिम पर्सनल लॉ के खिलाफ लड़ाई में एक मील के पत्थर के रूप में देखा जाता है। इसने हज़ारों महिलाओं के वैध दावे के लिए आधार तैयार किया, जिनकी उन्हें पहले अनुमति नहीं थी।
- हालाँकि मुस्लिम धर्मगुरुओं के दबाव में शाह बानो को अपने पति से मिलने वाला भत्ता त्यागना पड़ा और बाद में राजीव गांधी सरकार ने न्यायालय के निर्णय को ही पलट दिया था। वर्ष 2001 में सर्वोच्च न्यायालय ने डेनियल लतीफी मामले की सुनवाई के दौरान शाह बानो केस के निर्णय को पुनः सही ठहराते हुए तलाकशुदा मुस्लिम महिलाओं के लिए भत्ता सुनिश्चित कर दिया।

इंद्रा साहनी बनाम भारत संघ (1992)

मुख्य विषय: आरक्षण की संवैधानिकता से संबंधित निर्णय देना।

- इंद्रा साहनी मामले (1992) में अदालत ने सरकार के निर्णय को बरकरार रखा और घोषणा की कि ओबीसी के उन्नत वर्गों (यानी क्रीमी लेयर) को आरक्षण के लाभार्थियों की सूची से बाहर रखा जाए। साथ ही यह भी निर्णय दिया कि एससी और एसटी वर्ग को क्रीमी लेयर की अवधारणा से बाहर रखा जाना चाहिये।
- इसी वाद में सुप्रीम कोर्ट ने आरक्षण कोटे की सीमा को 50% कर दिया।
- सर्वोच्च न्यायालय ने इंदिरा साहनी बनाम भारत संघ मामले में अनुच्छेद 16 (4) के संदर्भ में निर्णय देते हुए कहा कि अनुच्छेद 16 (4) में दिया गया आरक्षण केवल आरंभिक नियुक्ति तक है, प्रोन्नति में नहीं।
- अतः इंदिरा साहनी वाद में यह स्पष्ट कहा गया है कि आरक्षण प्रोन्नति में नहीं दिया जा सकता।
- बाद में 77वाँ संविधान संशोधन किया गया और संविधान में अनुच्छेद 16 (4A) जोड़ा गया, इसके अनुसार उस स्थिति में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति को प्रोन्नति में दिये गए आरक्षण को जारी रखने की बात कही गई यदि राज्य को लगता है कि उनका पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है।
- 85वें संविधान संशोधन द्वारा SC/ST को प्रोन्नति में परिणामी वरिष्ठता प्रदान करने की बात कही गई है।

विशाखा बनाम राजस्थान राज्य (1997)

मुख्य विषय:

- कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न को रोकने के लिये दिशा-निर्देश जारी करना।
- विशाखा बनाम राजस्थान राज्य (विशाखा) मामले में कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न के संदर्भ में न्यायिक सक्रियता अपने शिखर पर पहुँच गई।

निर्णय कई कारणों से अभूतपूर्व था:

- भारत में पहली बार 'यौन उत्पीड़न' को आधिकारिक रूप से परिभाषित किया गया था।
- भारत में चूँकि कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न से संबंधित कोई कानून नहीं था, इसलिये अदालत ने कहा कि 'द कन्वेंशन ऑन द एलिमिनेशन ऑफ ऑल फॉर्म्स ऑफ डिस्क्रिमिनेशन अगेंस्ट वुमन' (CEDAW- 1980, भारत द्वारा हस्ताक्षरित) के आधार पर दिशा-निर्देश बनाए जाएंगे।
- अपने निर्णय को सही ठहराने के लिये अदालत ने कई स्रोतों का हवाला दिया, इसमें न्यायपालिका की स्वतंत्रता के सिद्धांतों का बीजिंग स्टेटमेंट, ऑस्ट्रेलिया के उच्च न्यायालय का एक निर्णय और उसके पहले के अन्य निर्णय शामिल हैं।

सुप्रीम कोर्ट ने निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण दिशा-निर्देश दिये:

- ‘विशाखा बनाम राजस्थान राज्य’ मामले में फैसला सुनाते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया कि 'ऐसा कोई भी अप्रिय हाव-भाव, व्यवहार, शब्द या कोई पहल जो यौन प्रकृति की हो, उसे यौन उत्पीड़न माना जाएगा।

- अपने इस निर्णय में न्यायालय ने एक अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार विधि 'दि कन्वेंशन ऑन द एलिमिनेशन ऑफ ऑल फॉर्म्स ऑफ डिस्क्रिमिनेशन अगेंस्ट वुमन' (CEDAW) का संदर्भ लेते हुए कार्यस्थलों पर महिला कर्मियों की सुरक्षा के मद्देनज़र कुछ दिशा-निर्देश जारी किये **जिन्हें विशाखा दिशा-निर्देश के नाम से जाना जाता है, जो इस प्रकार हैं:**
    - प्रत्येक रोज़गार प्रदाता का यह दायित्व होगा कि यौन उत्पीड़न के निवारण के लिये वह कंपनी की आचार संहिता में एक नियम शामिल करे।
    - संगठनों को अनिवार्य रूप से एक शिकायत समिति की स्थापना करनी चाहिये, जिसकी प्रमुख कोई महिला होनी चाहिये।
    - नियमों के उल्लंघनकर्त्ता के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्रवाई की जानी चाहिये और पीड़िता के हितों की रक्षा की जानी चाहिये।
    - महिला कर्मचारियों को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक बनाया जाना चाहिये।
- वस्तुतः इस ऐतिहासिक निर्णय में न्यायालय ने माना कि यौन उत्पीड़न की कोई भी घटना संविधान में अनुच्छेद 14, 15 और 21 के तहत दिये गए मौलिक अधिकारों तथा अनुच्छेद 19 (1) के तहत व्यक्तिगत स्वतंत्रता का उल्लंघन है।
- उल्लेखनीय है कि विशाखा दिशा-निर्देशों के अनुसरण में ही नवंबर 2010 में 'कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न के विरुद्ध महिला सुरक्षा विधेयक' अस्तित्व में आया।
- कार्यस्थल पर महिलाओं की सुरक्षा के माध्यम से देश में महिला सशक्तीकरण की दिशा में विशाखा दिशा-निर्देशों का उल्लेखनीय महत्त्व है।
- कार्यस्थलों के प्रभारी, सभी नियोक्ताओं या व्यक्तियों को यौन उत्पीड़न रोकने के लिये प्रयास करना चाहिये और यदि कोई व्यक्ति भारतीय दंड संहिता, 1860 या किसी अन्य कानून के तहत किसी विशेष अपराध के लिये दोषी है, तो उन्हें दोषी को दंडित करने के लिये उचित कार्रवाई करनी चाहिये।

अरुणा रामचंद्र शानबाग बनाम भारत संघ (2011)

- **मुख्य विषय:** संवैधानिक होने के नाते निष्क्रिय इच्छा-मृत्यु को स्वीकार करना।
- अरुणा शानबाग बनाम यूनियन ऑफ इंडिया (2011) मामले में पहली बार इच्छा-मृत्यु का मुद्दा सार्वजनिक चर्चा में आया।
- इस मामले में सुप्रीम कोर्ट ने अरुणा की इच्छा-मृत्यु की याचिका स्वीकारते हुए मेडिकल पैनल गठित करने का आदेश दिया था। हालाँकि बाद में न्यायालय ने अपना फैसला बदल दिया था।
- लेकिन इस निर्णय ने असाध्य रोगों से पीड़ित व्यक्ति को इच्छा-मृत्यु देने की बहस को आगे बढ़ाने का कार्य किया।
- इसके बाद एक ऐतिहासिक निर्णय (2018) में सर्वोच्च न्यायालय ने **पैसिव यूथेनेसिया** और "**लिविंग विल**" को मान्यता दी।

क्या है एक्टिव और पैसिव यूथेनेसिया?

- 'एक्टिव यूथेनेशिया' और 'पैसिव यूथेनेशिया' इन दोनों ही शब्दों का प्रयोग 'इच्छा-मृत्यु' को इंगित करने हेतु किया जाता है।
- 'एक्टिव यूथेनेशिया' वह स्थिति है, जब इच्छा-मृत्यु चाहने वाले किसी व्यक्ति को इस कृत्य में सहायता प्रदान की जाती है, जैसे- ज़हरीला इंजेक्शन लगाना आदि।
- वहीं 'पैसिव यूथेनेशिया' वह स्थिति है, जब इच्छा-मृत्यु के कृत्य में किसी प्रकार की कोई सहायता प्रदान नहीं की जाती।
- एक वाक्य में कहें तो एक्टिव यूथेनेशिया वह है, जिसमें मरीज़ की मृत्यु के लिये कुछ किया जाए, जबकि पैसिव यूथेनेशिया वह है जहाँ मरीज़ की जान बचाने के लिये कुछ न किया जाए।

क्या है लिविंग विल का मामला?

- महाराष्ट्र के लावते दंपति के अलावा एनजीओ 'कॉमन कॉज' ने हाल में सुप्रीम कोर्ट में याचिका दाखिल कर कहा था कि संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत जिस तरह नागरिकों को जीने का अधिकार दिया गया है, उसी तरह उन्हें मरने का भी अधिकार है।
- जबकि केंद्र सरकार का मानना है कि इच्छा-मृत्यु की वसीयत (लिविंग विल) लिखने की अनुमति नहीं दी जा सकती, हालाँकि मेडिकल बोर्ड के निर्देश पर मरणासन्न व्यक्ति का 'लाइफ सपोर्ट सिस्टम' हटाया जा सकता है।

लिली थॉमस बनाम भारत संघ (2013)

मुख्य विषय:

- 10 जुलाई, 2013 को लिली थॉमस बनाम भारत संघ मामले में कहा गया था कि एक सांसद या विधायक जो कि अपराध के लिये दोषी पाया जाता है, को न्यूनतम दो वर्ष का कारावास दिया जाएगा और वह सदन की सदस्यता तत्काल प्रभाव से खो देगा तथा उसे जेल अवधि समाप्त होने के बाद छह वर्ष के लिये चुनाव लड़ने से वंचित किया जाएगा।
- जनप्रतिनिधित्व कानून (RPA) -1951 की धारा 8 (1) और (2) के अंतर्गत प्रावधान है कि यदि कोई विधायिका सदस्य (सांसद अथवा विधायक) हत्या, बलात्कार, अस्पृश्यता, विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम के उल्लंघन; धर्म, भाषा या क्षेत्र के आधार पर शत्रुता पैदा करना, भारतीय संविधान का अपमान करना, प्रतिबंधित वस्तुओं का आयात या निर्यात करना, आतंकवादी गतिविधियों में शामिल होना जैसे अपराधों में लिप्त होता है, तो वह इस धारा के अंतर्गत अयोग्य माना जाएगा एवं उसे 6 वर्ष की अवधि के लिये अयोग्य घोषित कर दिया जाएगा।
- वहीं इस अधिनियम की धारा 8 (3) में प्रावधान है कि उपर्युक्त अपराधों के अलावा किसी भी अन्य अपराध के लिये दोषी ठहराए जाने वाले किसी भी विधायिका सदस्य को यदि दो वर्ष से अधिक के कारावास की सज़ा सुनाई जाती है तो उसे दोषी ठहराए जाने की तिथि से आयोग्य माना जाएगा। ऐसे

व्यक्ति को सज़ा पूरी किये जाने की तिथि से 6 वर्ष तक चुनाव लड़ने के लिये अयोग्य माना जाएगा।

- हालाँकि धारा 8 (4) में यह भी प्रावधान है कि यदि दोषी सदस्य निचली अदालत के आदेश के खिलाफ तीन महीने के भीतर उच्च न्यायालय में अपील दायर कर देता है तो वह अपनी सीट पर बना रह सकता है।
- किंतु 2013 में 'लिली थॉमस बनाम यूनियन ऑफ इंडिया' मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने इस धारा को असंवैधानिक घोषित कर निरस्त कर दिया था।

न्यायमूर्ति के.एस. पुट्टास्वामी बनाम भारत संघ (2017)

मुख्य विषय: निजिता का अधिकार एक मौलिक अधिकार है, जिसे अनुच्छेद 21 के अंतर्गत संरक्षण प्राप्त है।

- न्यायालय ने कहा है कि दरअसल इस मामले की सुनवाई के दौरान एटॉर्नी जनरल के.के. वेणुगोपाल का कहना था कि निजिता एक इलीट अवधारणा है यानी प्राइवेसी खाते-पीते घरों की बात है और निजिता का विचार बहुसंख्यक समाज की ज़रूरतों से मेल नहीं खाता। लेकिन संविधान के पहरेदार उच्चतम न्यायालय ने कहा कि 'ज़रूरतमंद लोगों को बस आर्थिक तरक्की चाहिये, नागरिक एवं राजनैतिक अधिकार नहीं', यह कहना उचित नहीं है।

मामले की पृष्ठभूमि

वर्ष 1954 में एम.पी. शर्मा मामले में 8 जजों की और वर्ष 1962 में खड़क सिंह मामले में 6 जजों की खंडपीठ ने निजिता को मौलिक अधिकार नहीं माना था। अतः इसी वर्ष जब इस संबंध में उच्चतम न्यायालय ने सुनवाई आरंभ की तो न्यायालय के नौ जजों की खंडपीठ बिठाई गई।

- दरअसल सबसे पहले वर्ष 2013 में भारत के सर्वोच्च न्यायालय में आधार की संवैधानिक वैधता को चुनौती देते हुए एक जनहित याचिका दायर की गई थी। न्यायमूर्ति चेलामेश्वर की अध्यक्षता वाली तीन जजों की पीठ ने 11 अगस्त, 2015 को निर्णय दिया कि आधार का इस्तेमाल केवल सार्वजनिक वितिरण प्रणाली (पीडीएस) और एलपीजी कनेक्शनों के लिये ही जाए।
- कुछ ही दिनों के बाद तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश एच.एल दत्तु की अध्यक्षता वाली खंडपीठ ने मनरेगा सहित कई अन्य योजनाओं में आधार के इस्तेमाल की इजाज़त दे दी। तत्पश्चात् शीर्ष न्यायालय में एक और याचिका दायर की गई कि क्या आधार मामले में निजिता के आधार का उल्लंघन हुआ है और क्या निजिता एक मौलिक अधिकार है?
- संविधान का भाग 3 जो कुछ अधिकारों को 'मौलिक' मानता है, में निजिता के अधिकार का जिक्र नहीं किया गया है। इन सभी बातों का संज्ञान लेते हुए इस वर्ष जुलाई में नौ जजों की संवैधानिक पीठ ने मामले की सुनवाई आरंभ कर दी और निम्नलिखित बिंदुओं पर विचार करना शुरू कर दिया।
    - निजिता के अधिकार का दायरा क्या है?
    - क्या निजिता का अधिकार सामान्य कानून द्वारा संरक्षित अधिकार है या एक मौलिक अधिकार है?
    - निजिता की श्रेणी कैसे तय होगी?
    - निजिता पर क्या प्रतिबंध हैं?
    - क्या निजिता का अधिकार, समानता का अधिकार है या फिर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का?

न्यायालय का निर्णय

- शीर्ष अदालत ने अपने निर्णय में कहा है कि जीने का अधिकार, निजिता के अधिकार और स्वतंत्रता के अधिकार को अलग-अलग करके नहीं बल्कि एक समग्र रूप देखा जाना चाहिये।
- न्यायालय के शब्दों में "निजिता मनुष्य के गरिमापूर्ण अस्तित्व का अभिन्न अंग है और यह सही है कि संविधान में इसका जिक्र नहीं है, लेकिन निजिता का अधिकार वह अधिकार है, जिसे संविधान में गढ़ा नहीं गया बल्कि मान्यता दी है।
- संविधान निजिता के अधिकार को संरक्षण देता है क्योंकि यह जीवन के अधिकार और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार का एक बाईप्रोडक्ट है। निजिता का अधिकार, स्वतंत्रता और सम्मान के साथ जीने के अन्य मौलिक अधिकारों के साहचर्य में लोकतंत्र को मज़बूत बनाएगा।
- निजिता की श्रेणी तय करते हुए न्यायालय ने कहा कि निजिता के अधिकार में व्यक्तिगत रुझान और पसंद को सम्मान देना, पारिवारिक जीवन की पवित्रता, शादी करने का फैसला, बच्चे पैदा करने का निर्णय, जैसी बातें शामिल हैं।
- किसी का अकेले रहने का अधिकार भी निजिता के तहत आएगा। निजिता का अधिकार किसी व्यक्ति की निजी स्वायत्तता की सुरक्षा करता है और जीवन के सभी अहम पहलुओं को अपने तरीके से तय करने की आज़ादी देता है।
- न्यायालय ने यह भी कहा है कि अगर कोई व्यक्ति सार्वजनिक जगह पर हो तो इसका अर्थ यह नहीं कि वह निजिता का दावा नहीं कर सकता।
- अन्य मूल अधिकारों की तरह ही निजिता के अधिकार में भी युक्तियुक्त निर्बंधन की व्यवस्था लागू रहेगी, लेकिन निजिता का उल्लंघन करने वाले किसी भी कानून को उचित और तर्कसंगत होना चाहिये।
- न्यायालय ने यह भी कहा है कि निजिता को केवल सरकार से ही खतरा नहीं है बल्कि गैर-सरकारी तत्त्वों द्वारा भी इसका हनन किया जा सकता है। अतः सरकार डेटा संरक्षण का पर्याप्त प्रयास करे।
- न्यायालय ने सूक्ष्मता से अवलोकन करते हुए कहा है कि 'किसी व्यक्ति के बारे में जानकारी जुटाना उस पर काबू पाने की प्रक्रिया का पहल कदम है'। अतः ऐसी सूचनाएँ कहाँ रखी जाएंगी, उनकी शर्तें क्या होंगी, किसी प्रकार की चूक होने पर जवाबदेही किसकी होगी? इन पहलुओं पर गौर करते हुए कानून बनाया जाना चाहिये।

पुट्टास्वामी (2017) निर्णय के तहत आनुपातिक परीक्षा

यह माना जाता है कि गोपनीयता एक प्राकृतिक अधिकार है जो सभी व्यक्तियों को विरासत में मिलता है और यह अधिकार केवल राजकीय कार्रवाई द्वारा निम्नलिखित 3 परिस्थितियों में प्रतिबंधित किया जा सकता है:

- सबसे पहले, ऐसी राजकीय कार्रवाई में एक विधायी जनादेश होना चाहिये;
- दूसरा, यह एक वैध राजकीय उद्देश्य का पालन करता हो; तथा
- तीसरा, यह आनुपातिक होना चाहिये, जैसे कि राज्य द्वारा की गयी कार्रवाई - इसकी प्रकृति और सीमा दोनों एक लोकतांत्रिक समाज के अनुरूप होनी चाहिये और कार्रवाई को पूरा करने के लिए उपलब्ध विकल्पों में से कम से कम घुसपैठ होनी चाहिये।

नवतेज सिंह जौहर बनाम भारत संघ (2018)

मुख्य विषय: भारतीय दंड संहिता (आईपीसी) की धारा 377 को अवैध ठहराना और समलैंगिकता को वैधता प्रदान करना।

- इसने 2013 के निर्णय को संवैधानिक रूप से अस्वीकार कर दिया। सर्वोच्च न्यायालय समलैंगिकता को अपराध मानने को चुनौती देने वाली याचिकाओं के एक समूह पर सुनवाई कर रहा था।
- याचिका ने धारा 377 को इस आधार पर चुनौती दी कि यह अस्पष्ट थी और इसने संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 19 और 21 के तहत गारंटीकृत समानता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, मानवीय गरिमा और निजता की सुरक्षा के संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन किया।
- न्यायालय ने अपने निर्णय में कहा है कि "यह एक व्यक्ति की अपनी पसंद का मामला है कि कौन उसके घर में प्रवेश करता है, वह कैसे रहता है और वह किससे संबंध स्थापित करना चाहता है"।
- न्यायालय ने इस बात पर ज़ोर दिया है कि किसी व्यक्ति का समलैंगिक होना भी उसका अपना निजी मामला है और निजता अब उसका मूल अधिकार है।

क्या है धारा 377?

- भारतीय दंड संहिता (IPC) की धारा 377 का संबंध अप्राकृतिक शारीरिक संबंधों से है। इसके अनुसार यदि दो लोग आपसी सहमति अथवा असहमति से आपस में अप्राकृतिक संबंध बनाते हैं और दोषी करार दिये जाते हैं तो उनको 10 वर्ष से लेकर उम्रकैद तक की सज़ा हो सकती है। अधिनियम में इस अपराध को संज्ञेय तथा गैर-जमानती माना गया है।
- यद्यपि व्यक्ति के चयन की स्वतंत्रता को महत्त्व देते हुए 2009 में हाईकोर्ट ने आपसी सहमति से एकांत में बनाए जाने वाले समलैंगिक संबंधों को अपराध के दायरे से बाहर करने का निर्णय दिया था। किंतु 2013 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा समलैंगिकता की स्थिति में उम्रकैद के प्रावधान को पुनः बहाल करने का फैसला सुनाया गया।

उपरोक्त निर्णयों ने मूल संविधान में नित नए नवाचारों के माध्यम से इसके प्रगतिशील होने के विचार को साकार किया है तथा यह अनवरत् जारी है, इसे तीन तलाक, सबरीमाला मंदिर में प्रवेश आदि निर्णयों के माध्यम से समझा जा सकता है।

PDF Refernece URL: https://www.drishtiias.com/hindi/printpdf/important-judgements-of-independent-india